अवतार सिंह

प्रधानाध्यापक
राजकीय प्राथमिक विद्यालय
तलवाड़ी, रुद्रप्रयाग

भरोसे की बुनियाद पर शिक्षक का सफर

सहायक अध्यापक – शीला कोहली

सी.आर.सी.सी. – सत्यवीर कश्यप

भोजनमाता – मंगला देवी

नामांकन – 39

रुद्रप्रयाग से पहले तलवाड़ी और फिर घनसाली मार्ग होते हुए अंतः में हम एक कच्ची सड़क को पकड़ते हुए गांव तक पहुंचते हैं। हमें करीब दोगुनी ऊंचाई में एक अंजान जगह पर जाना था। हम चील–चक्कर वाली घुमावदार सड़कों से जैसे–जैसे चढ़ते जा रहे थे वैसे–वैसे एक अजीब–सी उदासी और अंजान–सी नाउम्मीदी घेर रही थी। इन ऊंचे और वीरान पहाड़ों में कैसी जो होगी शिक्षा? क्या जो रुचि होगी होगा नीति–नियंताओं का यहां के समाज में? और यह भी कि ऐसी जगह पर शिक्षकों की अपनी दुनिया कहां है? क्या चार शिक्षक सुबह–शाम मिलकर बात भी कर पाते होंगे? बीबी–बच्चों और नगरों के आकर्षक जीवन का खयाल तो नहीं सताता होगा उन्हें? एक गुदगुदाता सिनेमाई खयाल 'थ्री इडियट' के उस दृश्य का आंखों में उतर आया, जहां कहानी का नायक सुपरिभाषित दुनिया को छोड़ लद्दाख के एक स्कूल में मस्ती की पाठशाला चलाता दिखाया गया है। हकीकत की दुनिया में यह मुमकिन है क्या?

कच्ची सड़क पर मकान बहुत दूरी पर थे और ऐसा आदमी ढूंढ पाना मुश्किल हो रहा था जो हमें प्राइमरी स्कूल का पता बता दे। एक जगह एक पैदल पगडंडी से एक बुजुर्ग उतरते दिखे तो उन्होंने बताया थोड़ा आगे चलकर आप बाइक सड़क पर खड़ी कर दें और वहीं सामने से एक खडंजा

मार्ग ऊपर जाता दिखेगा, उसे पकड़ लें। चूंकि चढ़ाई पर बाइक हांफ रही थी सो मैंने इसी जगह से बुजुर्ग वाली पगडंडी पकड़ ली, मेरा साथी सड़क से घूमकर बताए गए प्वाइंट तक आ गया।

खड़ंजा मार्ग से थोड़ा ही ऊपर चले थे कि पहले कुछ–कुछ और फिर बहुत सारे घर नजर आने लगे। पहाड़ अपने आंगन में न जाने ऐसी कितनी बसावटें संजोए होते हैं, जिनका सड़कों से अनुमान लगाना मुश्किल होता है। हम एक बेहद सुंदर, समृद्ध और घने गांव से गुजरते हैं। अभी मंजिल दूर है, चढ़ाई तीखी है लेकिन मंजर रूह को सुकून देने वाला। स्कूल पाला कुराली गांव का निचला हिस्सा है।

रुद्रप्रयाग के जखोली ब्लॉक में टिहरी जिले के चमियाला से सटा एक सुंदर गांव है, पाला कुराली। करीब एक हजार आबादी वाला गांव तकरीबन 1500 मीटर की ऊंचाई। गांव का एक हिस्सा बुग्याल है और एक हिस्सा खेती बाड़ी का। जाड़ों में लोग निचले हिस्से में रहते हैं और गर्मियों में बुग्याल पर चले जाते हैं। यह क्रम सदियों से चला आ रहा है। आबादी के आव्रजन के साथ स्कूल का भी नीचे–ऊपर आव्रजन होता है। यहां से एक दिन की पदयात्रा कर केदारनाथ धाम पहुंचा जा सकता है। पास के एक दूसरे बुग्याल में नरसिंह का मेला लगता है, जो यहां के जीवन की सबसे बड़ी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है।

गांव में जगह–जगह सेब के पेड़ यह संकेत देते हैं कि फल–उत्पादन के लिए यह जगह बड़ी मुफीद है। लोगों ने हमें बताया कि यहां की राजमा और आलू भी प्रसिद्ध हैं। कुछ समय से यहां के लोग इसका व्यवसाय भी करने लगे हैं। पशुपालन प्रमुख पेशा है सो कुछ समय से घर का बचा दूध

डेयरी में भी जाने लगा है। बांज–बुरांस के घने वनों के समीप होने से पानी की इफरात है लेकिन कोई गूल न बन पाने से अधिकांश भूमि ऊसर श्रेणी की है।

करीब दो दशक से यहां के पुरुष और युवक होटलों में काम करने के लिए बाहर जा रहे हैं, ज्यादातर विदेशों में। विदेश जाने वाले पहले व्यक्ति चैन सिंह राणा थे, जो मस्कट गए थे। इस समय इस गाँव के 75 फीसदी पुरुष कई देशों में हैं। दुबई, लंदन, ऑस्ट्रेलिया, थाईलैंड, जापान आदि जगहों पर। यहां से सरकारी नौकरी में दो ही व्यक्ति हैं एक किसी इंटर कॉलेज में प्रिंसिपल हैं जबकि दूसरे पास के ही स्कूल में शिक्षा मित्र। रुद्रप्रयाग की मौजूदा जिला पंचायत अध्यक्ष लक्ष्मी राणा इसी गांव से हैं, जो अब यहां नहीं रहती। जिन लोगों ने विदेशों में अच्छी कमाई की वे देहरादून, ऋषिकेश, श्यामपुर, जॉली ग्रांट आदि जगहों में घर बनाकर पलायन कर चुके हैं। लेकिन, अब भी ऐसे लोगों की तादात कम है क्योंकि विदेश में जो कमायी होती है वह इतनी भी नहीं कि तराई–भावर में महंगी जमीन लेकर उस पर घर बना सकें।

लोगों से बात करते हुए पाला कुराली की दो बड़ी खासियत मालूम हुई। एक, इस गांव की प्राकृतिक संपदा खुद में तमाम संभावनाएं लिए है। गांव सेब, राजमा, आलू, दूध और सब्जियों का उत्पादन कर सकता है। दूसरी, इस गांव की मानव संपदा ने भी खुद को साबित करने में कसर नहीं छोड़ी है। दो दशक से लगातार और बड़े पैमाने पर विदेश जा रहे यहां के युवक साबित करते हैं वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

"मगर सब कुछ अच्छा होते हुए भी सब कुछ ठीक नहीं है"। मुझे यह बात यहां के प्राइमरी स्कूल में प्रधानाध्यापक अवतार सिंह जी बताते हैं। हम उन्हीं से मिलने आज यहां आये थे। वे कहते हैं कि उत्तराखण्ड जैसे राज्य में आदमी को अपनी बेहतरी के लिए खुद ही प्रयास करने होते हैं। यहां के लोगों के प्रयास सराहनीय हैं लेकिन प्रयासों में सफलता के लिए जरूरी होता है कि लोग जरूरी दक्षताओं के साथ हों। देखिये वे जोड़ते हैं, "इतने लोग विदेशों में हैं, फिर भी गरीबी है। यह इसलिए है कि अब तक एक भी

लड़का शैफ नहीं बन पाया है। सब के सब खाना बनाते हैं, लजीज खाना बनाते हैं लेकिन वे शैफ नहीं बन सके। इसकी वजह शिक्षा है"।

जरूरी दक्षता से आपका मतलब क्या है?

मेरा मतलब प्रोफेशनल स्किल से ही है। मान लिया इन युवकों ने होटल मैनेजमेंट की डिग्री ली होती और उन्हें अंग्रेजी का आवश्यक ज्ञान होता तो वे इसी मेहनत में अधिक कमा रहे होते। उनका जीवन कहीं बेहतर होता। लेकिन, अभी गांव के संदर्भ में मेरा आशय दूसरा है। वह यह कि इस गांव में प्राथमिक शिक्षा बेहतर होती तो ये युवक प्रोफेशनल शिक्षा ले पाते। दरअसल, प्राथमिक स्तर पर ही शिक्षा से मोहभंग होने ने आगे का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। शिक्षा में हम आगे क्या करेंगे इसका सीधा संबंध बुनियादी शिक्षा में हमने क्या किया इससे है। हां कुछ लोग अपवाद हो सकते हैं जिनका बाद के जीवन में शिक्षा के प्रति रुझान पैदा हो जाता है। लेकिन, हजार में से एक ऐसा होगा।

तब तो आप यह भी कह रहे हैं बुनियादी शिक्षा देने वाले शिक्षक भी इस काबिलियत के होने चाहिए?

बिल्कुल मैं यह कह रहा हूं। इस गांव का तो मामला थोड़ा दूसरा है, यहां स्कूल अभी हाल–हाल में ही आया है। लेकिन, तमाम उदाहरण हैं जहां प्राथमिक स्कूलों में शिक्षकों की योग्यता संतोषजनक नहीं है। बच्चे को सामान्य भाषा–गणित नहीं सिखा पाते क्योंकि शिक्षकों को पढ़ाना नहीं आता। ऐसा नहीं कि सभी शिक्षकों में पढ़ाने की मंशा नहीं, लेकिन मंशा के बावजूद उन्हें बाल–मनोविज्ञान और बाल–परिवेश की ट्रेनिंग नहीं मिलती। हमारे बहुत सारे साथी बहुत प्रयास करते हैं, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिलती। समाज में लोग कहते हैं कि हम शिक्षकों को बहुत वेतन मिलता है जबकि मैं कहूंगा समाज और सरकार ने भारत के प्राथमिक शिक्षक को बहुत गरीब बना दिया है, मानसिक रूप से गरीब। मैं मानता हूं शिक्षक को भी अपने निरंतर विकास की जरूरत होती है, क्योंकि उसके सामने एक गतिमान समाज के गतिमान बच्चे हैं। यह समाज निरंतर बदल रहा है। एक बी.एड. और बी.टी.सी. की ट्रेनिंग से इसकी नब्ज नहीं पकड़ में

आ सकती। मैं खुद अपने में यह मानसिक कंगाली महसूस करता हूं, लेकिन अब अपने स्तर से इसे दूर करने का प्रयास कर रहा हूं। हम शिक्षक भी इसी व्यवस्था से बने हैं, साथ ही हमारा दायित्व इस व्यवस्था में बदलाव लाना भी है।

स्व–विकास के लिए आप क्या करते हैं?

पहले मैंने इस गांव के समाज को पढ़ा। चारों दिशाओं से आने वाले बच्चे बहुतेरा ज्ञान लेकर आते हैं। गांव के लोगों से निरंतर संवाद में रहता हूं। यहां की भाषा, खान–पान, भूगोल, जीवन–शैली, आर्थिकी, सामाजिक बुनावट इसका ज्ञान हासिल किया। यही ज्ञान सारी किताबों का और परिष्कृत ज्ञान का आधार है। साथ ही साथ मैं हर सप्ताह रुद्रप्रयाग में लाइब्रेरी जाता हूं। पढ़ता हूं। जो अर्जित किया है उसे बच्चों के साथ साझा करता हूं। साझा करने के तरीके निकालता हूं, ताकि वह ठीक से संप्रेषित हो सके। दो बार ब्लॉक स्तर पर मास्टर ट्रेनर भी रहा। इससे भी अपने सीखने में मदद मिलती है। अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन की ओर से आयोजित स्वैच्छिक ग्रीष्मकालीन कार्यशाला काफी मददगार रही।

बच्चों को पढ़ना सीखने में दिक्कतें आ रही हैं, यह सार्वभौमिक चुनौती है। आप इसके लिए क्या निदान कर रहे हैं?

अपनी जेब से बच्चों के लिए 6200 रुपये की किताबें लाया हूं। विभाग से जो मिला वो भी ले लिया। अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन से भी 'चकमक' जैसी पत्रिकाएं बच्चों के लिए लाता हूं। महीने में एक दिन वाचन और एक दिन लेखन के लिए तय है। यह प्रयास अभी–अभी शुरू हुआ है, लेकिन इसका असर दिखने लगा है। बच्चों को पाठ्य पुस्तकों के अलावा भी पुस्तकें मिलें तो उनकी छपी–सामग्रियों में रुचि जागती है। पढ़ना तब आता है जब

पढ़ना अच्छा काम लगे। मैंने हर बच्चे की प्रोफाइल बनायी है, उसी के अनुरूप हर बच्चे के लिए रणनीति बनाता हूं। बच्चों को गढ़वाली में बोलने की आजादी है। इससे नए आने वाले बच्चे बोलने में हिचकिचाते नहीं। वे गाय को 'गौड़ी' बोल दें तो इसमें कुछ बुरा नहीं। बच्चों के बचपन में बहुत सारी सामग्री है, यह मैं समझ रहा हूं।

यह स्कूल जहां आप पढ़ा रहे हैं, एक संस्था के रूप में इसको कैसे समझे हैं? इसकी समाज को बेहतर बनाने में कोई भूमिका दिखती है आपको?

इस गांव का प्राइमरी स्कूल इस गांव में सरकार की मौजूदगी का एकमात्र प्रतीक है। स्कूल अगर ठीक से चल रहा है तो लोग कहते हैं सरकार जैसी कोई चीज दुनिया में है। सितंबर 2012 में मेरी पहली पोस्टिंग इस स्कूल में हुई और यह एक अजीब–सी कहानी है। उस समय काफी नर्वस हो गया था। जिस दिन यहां आया उसी दिन यहां पढ़ा रही मैडम का रिलीविंग डे था। पहले एक प्रबंधन के स्कूल में पढ़ा चुका था, लेकिन सरकारी सिस्टम में काम करने का अनुभव नहीं था। स्कूल तब गांव में दूसरी जगह जर्जर भवन में चल रहा था। इस स्कूल का निर्माण आपदा की वजह से बाधित था।

बच्चे लगातार मेरा स्कूल छोड़कर गांव में ही चल रहे शिशु मंदिर में जा रहे थे। ग्राम प्रधान नए स्कूल में हाथ लगाने को तैयार नहीं थे। जो बजट पास था, वह अटका हुआ था। यह मेरे लिए विकट परीक्षा का क्षण था। या तो मैं कहीं और पोस्टिंग मांगता या यहीं डटा रहता। मैंने निर्णय किया कि मैं स्कूल को बचाने का प्रयास करूं। मेरे जाने का मतलब था, स्कूल का हमेशा–हमेशा के लिए बंद हो जाना। मैंने गांव में बात करना शुरू किया।

लोगों से मिला। कुछ लोग इस बात के लिए राजी हो गए कि गांव में सरकारी स्कूल बना रहना चाहिए। मैंने भी विभाग से लड़–झगड़कर रुका हुआ बजट पास करा लिया। इसमें काफी खतरे थे। इंजीनियर ने कहा– भवन मानकों के अनुरूप होगा, लेकिन बजट मानक से कम है। रंग–रोगन मैंने अपने पैसे से करने का तय किया। और मैंने किसी तरह काम शुरू करा दिया। डर भी लगा लेकिन यह सोचकर आगे बढ़ता रहा कि मैं कोई गलत काम नहीं कर रहा। धीरे–धीरे भवन बन गया। एक संस्था से स्कूल के लिए गैस का कनेक्शन भी लिया। लेकिन जैसे ही भवन खड़ा हुआ 2013 की आपदा आ गयी। पूरा रुद्रप्रयाग जिला अफरातफरी में उलझ गया। जिले से आदेश आया कि आपदा राहत कार्य के लिए स्कूल खाली करवा दें। मैं विभाग से उलझ गया, मैं किसी तरह स्कूल के लिए बच्चे जुटा रहा था। मैंने विभाग से कहा कि या तो हमारे गाँव के शिशु मंदिर को भी आपदा राहत कार्य के लिए खाली करवाया जाय या हमारा स्कूल भी चलने दें। किसी तरह अगस्त 2013 से मैं स्कूल को चलाने की स्थिति में आया यहां के सात बच्चों के साथ। इन तीन सालों में यह संख्या 38 तक आ गयी है। पिछले साल मुझे जनपद में बेस्ट एस.एम.सी. का अवार्ड मिला। आज के दिन गांव के सभी लोग इसे अपना स्कूल मानते हैं। बच्चे शिशु मंदिर छोड़कर यहां आ रहे हैं। शायद मैं इस संस्था को समझा हूं और इसे संवारने में लगा हूं।

आपका संघर्ष और आपकी जिजीविषा काबिले तारीफ है। आपने कठिन मगर सही रास्ता चुना। परिणामस्वरूप, एक स्तर की सफलता भी आपने हासिल कर ली है। अब स्कूल की नई बिल्डिंग है। स्कूल में बच्चे भी आ गए हैं। अकादमिक चुनौतियों के लिए आप क्या कर रहे हैं?

पहली चुनौती से निपटते हुए मैंने सीखा कि समुदाय का और अभिभावकों का विश्वास जीतना बहुत आवश्यक है। स्कूल की और शिक्षकों की भूमिका के बारे में एस.एम.सी. बैठक में खुलकर बात होती है। किस बच्चे में क्या अच्छा है यह बताया जाता है, साथ ही किस बच्चे को किस चीज की जरूरत है वह भी। मेरे पास प्रत्येक बच्चे के अभिभावक का फोन नंबर है।

यदि कोई बच्चा स्कूल नहीं आता तो मैं उसके अभिभावक से उसका कारण पूछ लेता हूं। बच्चे और अभिभावक दोनों को लगता है स्कूल न जाना बड़ी बात है और स्कूल जाना भी बड़ी बात है। इस तरह यहां उपस्थिति संतोषजनक बनी रहती है। ऐसे बात करने से बच्चों की घर की स्थितियों का भी ज्ञान हो जाता है। माता–पिता से कहा गया है कि वो काम के दौरान भी बच्चों से स्कूल में पढ़े–लिखे गए को लेकर बात करते रहें। वे स्कूल की चीजों पर बात करते रहते हैं तो बच्चों को वह काम महत्व का लगता है। मैं सप्ताह के छह दिन गांव में ही रहता हूं। इन चार सालों में स्कूल के लिए मैंने जो आग्रह दिखाया उसका परिणाम यह हुआ कि मेरा किराया नहीं पड़ता। गांव के लोग ही मुझे दूध–छांछ दे देते हैं। सब्जी भी मिल जाती है। मैं शाम की कक्षाएं लगाता हूं। इन्हें रेमेडियल कक्षाएं आप कह सकते हैं, मैं तो कक्षाएं ही कहता हूं। यहां कोशिश होती है कि बच्चों का अधिक से अधिक समय किताबों के साथ गुजरे। वे किताबों की दुनिया के आदी हो जाएं।

शिशु मंदिर से यहां दो बालिकाएं आयीं। उन्हें वहां 'चैलेंजिंग' बताया गया था। मैंने उन्हें यहां बिना किसी दवाब के बैठने दिया। सहज होने दिया। वे पहले गुमसुम बैठी रहती थी, अचानक एक दिन मैंने देखा उनमें से एक बच्ची दूसरों के साथ डांस कर रही है। कुछ समय बाद वह सामान्य हो गयी। दूसरा बच्चा विशेष आवश्यकता वाला बच्चा है। अब वह थोड़ा–थोड़ा बोलना शुरु कर रहा है। स्कूल आना और पूरे समय स्कूल में बने रहना उसे अच्छा लगता है। स्कूल के बाद के स्कूल यानी शाम के स्कूल में हमेशा पढ़ाई–लिखाई ही नहीं होती खेल–कूद भी होते हैं। बच्चों के व्यक्तित्व विकास के भी काम होते हैं। जिसमें नृत्य, गीत, योगा आदि शामिल है। गर्मियों में तो स्कूल आठ बजे तक जीवंत बना रहता है। गांव से जिस व्यक्ति ने इस स्कूल के लिए जमीन दान दी, उनकी बेटी यहां निशुल्क पढ़ाने आ जाती है। ऐसे ही एक और प्रेरक आते है। उन दोनों को क्या करना है, कैसे करना है उस पर हम दोनों शिक्षक उनसे बात करते रहते हैं। हर दिन के लिए बच्चों की कोई न कोई एक्टिविटी तय है। वाचन के लिए अभिभावकों को भी स्कूल में बुलाया जाता है और वे आते भी हैं।

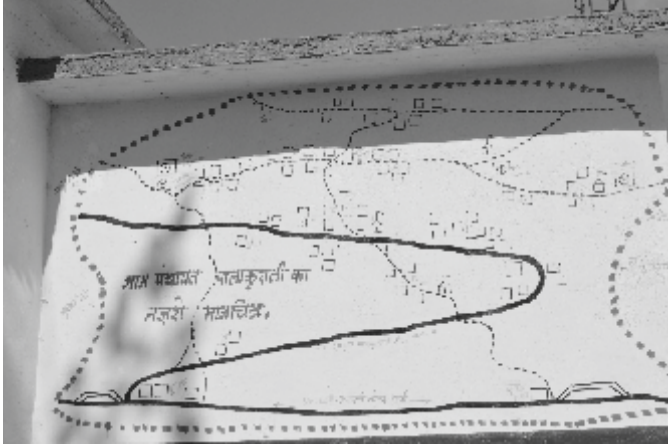

इतना सब कुछ करना, इतना सब सहना। घर–परिवार से दूर रहना। क्या है इस काम में जो आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है?

यह सवाल आपने ठीक पूछा। मैं चाह ही रहा था आप यह सवाल मुझसे पूछें। यह सच बात है कि मैंने एक ही सपना देखा। सीधा–सादा सपना। सरकारी स्कूल में शिक्षक बनने का सपना। मैं एक छोटे से गांव से था और मेरी शिक्षा भी यहीं आस–पास के विद्यालयों और डिग्री कॉलेज में हुई। शायद इसीलिए भी बड़ा सपना नहीं देखा होगा और शायद यह अच्छा ही हुआ और आजीविका के लंबे संघर्ष की परिणति हुई कि मैं एक दिन सरकारी स्कूल में आ गया। यही गहरी चाहत वह प्रेरणा थी जिससे मैं इस गांव के स्कूल को बंद होने से बचा पाया। और अब उसे संवारने के काम में जुट गया हूं। मेरी लगन ने गांव वालों का भरोसा जीता, अब मैं उनका भरोसा नहीं टूटने दूंगा। जिस तरह एक लड़की के दो घर होते हैं एक मायका और ससुराल। मैं इसे अपना दूसरा घर मानता हूं। घर–परिवार का महत्व होता है उसे भी मैं मानता हूं, सबके बच्चे घर पर अपने माता–पिता का रास्ता देखते हैं। लेकिन आज के दिन मेरा परिवार भी यह मानने लगा है कि मैं जो कर रहा हूं, वह महत्वपूर्ण काम है। अगर मैं वह नहीं करूंगा तो कुछ होने से रह जायेगा। जैसे सीमाओं पर तैनात फौजियों के परिवार वाले मानते हैं, उनका काम महत्वपूर्ण है। वे सीमाओं की रक्षा करते हैं। हम शिक्षकों के हाथ में तो देश के भविष्य की बुनियाद रखने का काम है। 2013 में मैं यदि इस जगह से भागने की कोशिश करता तो खुद को कभी माफ नहीं कर पाता।

गुरुजी से लंबी वार्ता के बाद हमें गांव के लोगों से भी बातचीत का मौका मिला। गांव के लोगों के लिए अवतार सिंह मास्साब गांव में नयी उम्मीद के

अवतार सरीखे थे। महिलाओं ने हमें बताया कि बच्चे खुशी–खुशी स्कूल जाते हैं और चहकते हुए घर लौटते हैं। ऐसा गुरुजी के सरल और मृदु व्यवहार की वजह से होता है। बुजुर्गों ने बताया कि सर जी ने इस गांव में भरोसे की एक मिसाल पेश की है। शुरू–शुरू में गांव के लोगों ने स्कूल में कोई रुचि नहीं ली। लेकिन जब देखा कि एक युवक किस तरह सारी दुश्वारियों से अकेले जूझ रहा है, वह भी उनके बच्चों के लिए तो सबका ध्यान उनकी ओर गया। आज वह गांव के ही सदस्य जैसे हैं, बल्कि कई मामलों में गांव वालों के मार्गदर्शक हैं। एक बच्चे की दादी हमें बताती हैं इस स्कूल में बच्चे जो सीख रहे हैं वह घर आकर उन्हें भी बताते हैं। इससे वे भी कुछ न कुछ सीख रहे हैं। होटल का काम करने वाला विदेश से लौटा एक युवक हमें बताता है जब बच्चों को यहां मजबूत नींव मिलेगी तो वे आगे जाकर जरूर कुछ न कुछ बन सकेंगे।

(अवतार सिंह से हुई भास्कर उप्रेती व जगमोहन चोपता की बातचीत पर आधारित)